ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 246-250

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

भारतीय आधुनिक कला शैली (समीक्षावाद) के उद्भव के कारण

डॉ0 अमृत लाल

एसोसिएट प्रोफेसर– ललित कला विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ, (उ0प्र0) भारत

Received- 02 .12. 2021, Revised- 07 .12. 2021, Accepted - 11.12.2021 E-mail: aaryavrat2013@gmail-com

सारांशः ***आधुनिक कला समीक्षावादी कला शैली के जनक प्रोफेसर राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार "समीक्षावाद भारतीय आधुनिक कला का एक सशक्त आन्दोलन है जिसने भारतीय आधुनिक कला को पाश्चात्य आधुनिक कला के प्रभाव से मुक्त कर एक मौलिक भारतीय स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया है कला को समाज की वर्तमान समस्याओं से जोड़कर, सरल, स्पष्ट, कलात्मक भाषा में व्यग्यात्मक एवं प्रतीकात्मक स्वरूप प्रदान कर स्वग्राहय बनाया है। अतः आधुनिक कला समीक्षावादी कला शैली समाजोन्मुखी कला शैली है।***

कुंजीभूत शब्द– आधुनिक कला, समीक्षावादी कला, सशक्त आन्दोलन, मौलिक भारतीय स्वरूप, वर्तमान समस्या।

समीक्षावादी कला शैली के उद्भव के निम्नलिखित कारण है।

(क) पश्चिमी आधुनिक कला और विचारो का भारत में आक्रमण और प्रभाव।

(ख) चित्रकला की परम्पराओं का लगातार रूप वि.ति होते जाना।

(ग) मौलिक चिन्तन का अभाव एवं ललित कला अकादमियों का अदूरदर्शी व्यवहार।

(घ) कला विद्यालयों में मौलिक पाठ्य–क्रम एवं शिक्षा नीति का अभाव।

(क) पश्चिमी आधुनिक कला और विचारों का भारत में आक्रमण और प्रभाव– पश्चिमी आधुनिक कला और विचारों का भारत में आक्रमण और प्रभाव तो भारतीय कला पर ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पूर्व से ही पड़ना आरम्भ हो गया था। अंग्रेजों ने शुरू से ही कोशिश की कि पाश्चात्य सभ्यता भारतीयों को मान्य हो जाय किन्तु यह काम कठिन था और जोखिम से भरा हुआ था। भारतीय संस्ति, सभ्यता, विचार कला तथा परम्पराओं की जड़े बड़ी गहरी थी। वे कभी भी उसे उखाड़ फेकने में सफल नहीं हो सकते थे। फिर भी भारत के बड़े नगरों के जीवन पर उसका प्रभाव पड़ा। रहन–सहन के तरीको तथा विचारों में काफी परिवर्तन आये। नागरिको ने अंग्रेजी भाषा सीरवी पोशाक पहनी, खान–पान के तरीके अपनाये रहन–सहन में फर्क आया, रुचियों में परिवर्तन आया। जितना ही लोग पाश्चात्य सभ्यता से परिचित होते गये। यहाँ की चमक दमक से प्रभावित होते चले गये। पश्चिमी प्रभाव से उन्हें बहुत कुछ ऐसा महसूस होने लगा कि उनकी अपना सभ्यता और संस्ति पुरानी पड़ गई है, पिछड़ गई है, और पश्चिमी सभ्यता बहुत आगे निकल गई है, यदि उसका अनुसरण नहीं किया जाता तो भारतीय गँवार ही रह जायेगे और कभी प्रगति नहीं कर सकेगे। नागरिको ने पश्चिम की नकल को प्रगति तथा आधुनिकता का पथ मान लिया था। यदि १८५७ में भारत में स्वाधीनता की आग न प्रज्वलित हुई होती और बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्वदेश आन्दोलन न छोड़ा गया होता तो पश्चिमी साम्राज्यवाद तथा सभ्यता की आँधी ने भारतीय जीवन, संस्कृति तथा निजस्व की जड़ों को ही जरित कर दिया होता। फिर भी पश्चिमी फैशन नगरों में काफी कुछ पोषित पालित होता रहा। पश्चिमी साहित्य और कला को काफी कुछ अपनाना आरम्भ हो गया था। यद्यपि इस प्रवृत्ति को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के कारण काफी धक्का लगा था। किन्तु उससे छुटकारा भारतीय राजनैतिक स्वतंत्रता के पश्चात भी प्राप्त न हो सकता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही भारत में पाश्चात्य आधुनिक कला का पदार्पण कलकत्ते में स्वर्गीय गगनेन्द्र नाथ टैगोर तथा स्वर्गीय रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा संचालित राष्ट्रीय कला का आन्दोलन (बंगाल स्कूल) इतना प्रबल हो रहा था कि उस समय उपरोक्त दोनों कलाकारों का भारतीय कला पर प्रभाव नगण्य था। बाद में स्वर्गीया अमृता शेरगिल पेरिस से आधुनिक कला सीख कर भारत आई पर बंगाल स्कूल के प्रचार–प्रसार के आगे उनकी कला का भी भारतीय कला पर प्रभाव नगण्य ही रहा। बम्बई में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व पाश्चात्य यथार्थवादी कला (रियालिज्म) का प्रचार–प्रसार तेजी पर था किन्तु वहाँ भी स्वर्गीय रविशंकर रावत, कनुदेसाई तथा अहिवासी ऐसे कलाकार बंगाल शैली से प्रभावित होकर राष्ट्रीय रंग–ढंग की कला का प्रसार–प्रचार कर रहे थे।

मदास में स्वर्गीय राजा रवि वर्मा भी पाश्चात्य यथार्थवादी कला के प्रभाव में काम कर रहे थे किन्तु वहा भी आचर्य अवनीन्द्र नाथ टैगोर के शिष्य वेनकटप्पा तथा देवी प्रसाद राय चौधरी ऐसे कलाकार बंगाल शैली के प्रचार–प्रसार में लगे थे। पंजाब में समरेन्द्र नाथ गुप्त, राजस्थान में शैलेन्द्र नाथ डे, उत्तर प्रदेश में असित कुमार हल्दर तथा झितीन्द्रनाथ मजूमदार, बंगाल में स्वयं आचार्य अवनीन्द्र नाथ टैगोर तथा नन्दलाल बोस आदि राष्ट्रीय कला के प्रचार–प्रसार में लगे थे। और बंगाल शैली लगभग भारत के सभी नगरों में प्रचलित होना आरम्भ कर चुकी थी। इसी बीच स्वर्गीय यामिनी राय ने भारतीय लोक कला से प्रेरणा लेकर एक लोकोन्मुख शैली का प्रचार–प्रसार भी किया। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही साथ एक नया जोश पाश्चात्य आधुनिक कला को अपनाने का

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

उभरा और बंगाल शैली का राष्ट्रीय कला आन्दोलन लगातार क्षीण पड़ता चला गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थापित राष्ट्रीय ललित कला अकादमी दिल्ली द्वारा पूरे जोश खरोश के साथ पाश्चात्य तथा आधुनिक कला का पथगामी बनाने का राष्ट्र विरोधी कार्यक्रम जाने–अनजाने चलाया गया और उसकी देखा–देखी राज्य ललित कला अकादमियों तथा आर्ट गैलरियों द्वारा भी वही रास्ता अपनाया गया। प्रति वर्ष पाश्चात्य आधुनिक कला के पथगामी भारतीय कलाकारों को सम्मानित पुरस्.त तथा प्रचारित किया जाने लगा और प्रायः सभी बड़े नगरो में पाश्चात्य कला शैलियों में प्रवीण होने की होड़ सी लग गई और ललित कला विद्यालयों तथा विश्वविद्यालय के ललित कला विभागों द्वारा भी पाश्चात्य आधुनिक कला का प्रचार–प्रसार होने लगा। आज स्थिति यह है कि वर्तमान भारत की अपनी कला–शैली के नाम पर कुछ भी देखने को नहीं मिलता। जो आधुनिक कला पश्चिमी देशो में दिखाई पड़ती है। वही भारत में। संसार के कला मंच पर वर्तमान भारतीय कला का कोई अपना स्वरूप .ष्टिगत नहीं है यह अत्यन्त चिता का विषय है। भारतीय कला प्रतिमा के सम्मुरव यह एक जबरदस्त चुनौती है।

कलाकारों में जल्दी से जल्दी पश्चिमी आधुनिक कला की नकल कर आधुनिक बनने का भूत सवार हो गया। अमृता शेरगिल ने भारत आकर भारतीय जीवन, संस्.ति, के साथ–साथ, घूम–घूम कर, भारत भ्रमण कर, प्राचीन भारतीय कला का अध्ययन, मनन अनुशीलन आरम्भ किया था किन्तु उनके पीछे चलने वाले कलाकारों ने उनके प्रभाव से तो मुक्ति पा ही ली प्राचीन भारतीय कलाओं से भी अपना नाता तोड़ लिया। भारतीय कलाकारों के प्रेरणा स्रोत पिकासो, ब्राक, मातिस्स सल्बाडोर डाली, कैंडिस्की, मुंच, मोन्द्रियाँ आदि पश्चिमी कला कार बन गये।

सबसे अधिक जोरदार प्रभाव भारतीय कलाकारों का जर्मन एक्सप्रेरिनज्म, 'क्यूविज्म' 'सरियालिज्म' तथा 'ऐब्सट्रेक्ट आर्ट का पड़ा। किन्तु एक विशेषता देखने में यह आई कि अधिकांश कलाकारों ने मात्र पाश्चात्य चित्रों को देख कर प्रभाव ग्रहण किया इन आन्दोलनों की भूमिका तथा विचार धारा को समझने बूझने का ज्यादा प्रयास नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि किसी एक शैली का प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि सबका मिला–जुला प्रभाव पड़ता रहा। शायद ही कोई भारतीय कलाकार हो जिससे अच्छी तरह समझ–बूझ कर किसी पाश्चात्य आधुनिक शैली का पल्ला पकड़ा हो। यही कारण है कि अधिकांश ऐसे कलाकार यह कहते है कि वे मौलिक रचना कर रहे है किसी खास शैली या कलाकार से प्रभावित होकर नहीं। यह तो वे . मानते है कि पश्चिमी आधुनिक कला का प्रभाव भारतीय कला पर पड़ रहा है। किन्तु इसे वे आज की दुनिया में स्वाभाविक समझते है और कहते है। कला का अन्त क्षोत्रीय आंचलिक तथा राष्ट्रीय नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय हो गई है।

(ख) चित्रकला की परम्पराओं का लगातार रूप विकृत होते जाना– कला के क्षेत्र में परम्परा तोड़ने का सवाल या परम्परा से मुक्त होने का सवाल इधार ७०वीं शताब्दी में फिर सामने आया स्वास कर आजादी के बाद। अंग्रेजों के आगमन के पहले भारत में मुगल कला की परम्परा थी। बाद में उसका स्थान यूरोपीय आधार पर विकसित कला परम्परा ने लिया। आजकल आधुनिक कला के नाम पर ऐसी कला भी प्रदर्शित की जा रही है जिसका सम्भवतः समाज से दूर तक भी सम्बन्ध दिखाई नहीं देता यह ऐसी .तियाँ होती है जिसको देख कर यह पता ही नही चलता कि उसमें क्या दर्शाया गया है। चित्रों में केवल विभिन्न रंगों के धब्बे, टेढ़ी–मेढ़ी, आड़ी–तिरछी रेखाये या अनबूझ किस्म के सूक्ष्म आकार दिखाई पड़ते है, जिनको देखकर यह बिल्कुल समझ में नहीं आता कि उनका तात्पर्य क्या है, वे क्यों दशयि गये है। कुछ ऐसे चित्र भी प्रदर्शित किये गये है जिनमें जो भी वस्तुयें अथवा आकृतियाँ रहती है वे टेढ़ी–मेढ़ी अथवा रूप वि.त सी लगती है उनका भी चित्रित करने का मूल आशय क्या है, समझ में नहीं आता। ऐसा लगता है कलाकारों ने चित्रों में ऊँट–पटांग, अनाप–शनाप जो भी मन में आया, बिना सोचे समझे चित्रित कर दिया है। जब यह चित्र दर्शकों की समझ में नहीं आते। और वे कलाकार से जानना चाहते है कि इनमें उसका क्या आशय है तो वे कहते है यह आधुनिक कला है, सब के समझ में आने वाली चीज नहीं। बस जो समझ में आये देखिये।

इसमें कोई शक नहीं कि पाश्चात्य आधुनिक कला का आरम्भ परम्परा तथा संस्.ति की मान्यताओं को नकार कर ही हुआ था चाहे हम उसका आरम्भ 'इम्प्रेरिनज्म' से माने अथवा फाविज्म से। युचरिस्ट' तथा 'दादाइज्म' के समर्थको ने तो खुलकर यह स्वीकार किया था और परम्परा तथा संस्.ति के खिलाफ जेहाद सा बोल दिया था। यहाँ तक कि उन्होंने सभी पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों को जलाकार नष्ट–भष्ट कर डालने तक की बात कही थी। उन्होंने खुले तौर पर कला के मान्य सिद्धान्तों, आदर्शों तथा सौन्दर्य शास्त्रीय विचारों का परित्याग किया था। यथार्थवादी कला को नकार कर अति यथार्थवाद का जन्म हुआ था।

इसके पश्चात तो कला नहीं अकला ही मुस्वार हुई थी। कला ने ऐसा रूप अपनाया कि वह दर्शक की समझ और पकड़ से पूरी तरह बाहर चली गई। कला जो एक सशक्त भाषा के रूप में विचारों तथा भावनाओं का वाहक थी सांस्कृतिक सामाजिक आदान–प्रदान का माध्यम थी, वह अत्यन्त व्यक्तिगत प्रलाप, अनाप–शनाप की अभिव्यक्ति, मानसिक जटिलताओं की गुत्थी बनकर रह गई। न तो उसमें प्राचीन संस्कृति की गमक वची, न वर्तमान परम्परा व प्रगति का लेखा जोख्वा, और न मानव के सुखद भविष्य का कोई स्वप्न। अतः रूप वि.त के पक्ष में इतना ही कहा जा सकता है कि इसके जन्म का कारण स्वयं कलाकार नहीं था उसकी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

जटिल सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा दार्शनिक परिस्थितियाँ था, जिनसे मुक्ति पाने की लालसा में उसे घोर व्यक्तिवादी रूप अपनाना पड़ा। पाश्चात्य आधुनिक कला दो भयानक मानव द्रोही महायुद्धों के वातावरण का प्रतिफल मात्र थी, इसे नकारा नहीं जा सकता। इसे मानव संहार के रक्त से जन्मा सृजन कहा जा सकता है।

(ग) मौलिक चिन्तन का अभाव एवं ललित कला अकादमियो का अदूरदर्शी व्यवहार – आधुनिकता की एक बहुत बड़ी शर्त मौलिकता है किन्तु मौलिकता किसी भी विचार या कार्य के क्षेत्र में उत्ष्टता की शर्त नहीं है। विचार अथवा कार्य अपने पूर्व के विचारों तथा कार्यों से भिन्न हो सकता है नया हो सकता है किन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह उपयोगी हो, महत्वपूर्ण हो अथवा उत्कृष्ट हो। इसलिये वह मौलिकता जो उपयोगी, महत्वपूर्ण अथवा उत्ष्ट नहीं, उसे बात का बतंगड़, ऊल जलूल अथवा तमाशा ही मानना चाहिये और ऐसे तमाशे पाश्चात्य आधुनिक कला के क्षेत्र में रोज ही देखने को मिलते रहे है। कला तमाशा बाजीगरी हाथ की सफाई या जादूगरी नहीं है। यह सब मात्र क्षणिक मनोरंजन के साधन होते है, कला के अनुभूति जनक तथा संवेदनात्मक स्तर तक नहीं पहुंच पाते।

– प्रो० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार

आधुनिकता का अर्थ समकालीनता से भी लिया जाता है किन्तु हर एक कार्य या विचार जो वर्तमान में हो रहा है, जरूरी नहीं कि आधुनिक हो। आज भी अनेक स्थानों पर आदिवासी जातियां पाई जाती है, किन्तु उनका कार्य तथा विचार परम्परागत न हो और जिस व्यक्ति अथवा समाज में परम्परागत ढंग से कार्य तथा विचार किये जाते है, उसे आधुनिक नहीं माना जा सकता। जो व्यक्ति अथवा समाज अपनी सोच, समड़ा, खोज अथवा अनुभूति के आधार पर अपनी परम्पराओं की सीमा को लांघ जाता है, वही आधुनिक होता है।, किन्तु कोई भी मतफिरा या मूर्च भी अक्सर अपनी परम्परा की सीमा लाँघ जाता है– उसे आधुनिक नहीं मतफिरा या मूर्च भी अवसर अपनी परम्परा की सीमा लाँघ जाता हैउसे आधुनिक नहीं, मतफिरा, सनकी या पागल ही जाना जायगा क्योकि उसके क्रिया–कलाप विचार, समाज के हित में नहीं होते। और जो मौलिकता अथवा आधुनिकता समाज के हित में नहीं उसे जीवन में अथवा समाज में कोई महत्व प्राप्त नहीं हो सकता। मौलिकता विचारों अथवा चिंतन कार्य का वह पक्षा है जो उसे समाज के हितकारी बनाता है। वर्तमान समाज के लिये कौन सा कार्य या विचार कितना अधिक हितकारी है, यह मौलिकता की पहिचान है और इसीलिये मौलिकता आधुनिकता के लिये एक शर्त है।

परम्परा और आधुनिकता विरोधी स्वर नहीं है। बल्कि एक दूसरे के पूरक है। परम्परा की आधार भूमि या आधार शिला पर आधुनिकता का नया महल खड़ा होता है। आधुनिकता परम्परा की अगली कड़ी होती है, परम्परा को नया अर्थ देती है आगे पढ़ाती है। परम्परा और आधुनिकता पूर्व अर्जित पूँजी तथा वर्तमान की नई कमाई के रूप में होते है और दोनों इकट्ठा हो कर कोष को बढ़ाते है।

समीक्षावाद आधुनिक भारत का प्रथम देशी तथा मौलिक कला–आन्दोलन है। इसके पूर्व आधुनिक भारत में बंगाल शैली के नाम से एक और आन्दोलन विकसित हुआ था। किन्तु वह नव शास्त्रीयतावादी था और प्राचीन कला की मान्यताओं को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान कराना चाहता था। समीक्षावाद का ऐसा कोई आग्रह नहीं है। वह प्राचीन भारतीय कला को अपनी सोच की आधार भूमि मानता है। जिस पर खड़ा हो कर वह नई सम्भावनाओं की ओर प्रमाण करता है। बंगाल कला–आन्दोलन तथा समीक्षावादी कला–आन्दोलन के बीच भारत में जो कला प्रचलित रही है। उसकी मुख्य प्रकृति पाश्चात्य आधुनिक कला–प्रवृत्तियों का अध्ययन, अनुकरण तथा अनुशीलन ही था। इसलिये उसे भारतीय कला का कोई मौलिक आधुनिक कला–आन्दोलन नहीं माना जा सकता, यद्यपि इस बीच अनेक कुशल कलाकार उभर कर सामने आये है। कुछ एक कलाकारों ने व्यक्तिगत रूप से कुछ मौलिक प्रयोग तथा प्रयास भी किये है। लेकिन उनमें से एक भी स्पष्ट रूप से उभर कर एक नये कला–आन्दोलन का स्वरूप नहीं ग्रहण कर सका।

कलाकार यामिनी राय तथा अमृता शेरगिल ही ऐसे दो नाम उभर कर सामने आते है जिनकी कला में क्रान्ति के कुछ लक्षण दिखाई पड़े थे, किन्तु वे भी किसी नये, मौलिक तथा आधुनिक भारतीय कला–आन्दोलन को उभारने तथा विकसित करने में समर्थ नहीं हो सके। इस .ष्टि से समीक्षावाद भारत में प्रथम आधुनिक कला का मौलिक तथा स्वदेशी आन्दोलन है।

अकादमियों द्वारा वार्षिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती है, उनका धूमधाम से प्रचार किया जाता है। बड़े–बड़े पुरस्कारों की घोषणा की जाती है, रचनायें स्वरीदने का लालच दिया जाता है। कलाकारों से 'फीस' लेकर रचनायें आमंत्रित की जाती है। हजारों की तादात् में छोटे बड़े–बड़े कैनवस तथा तैल चित्रण के माहौल में बड़ी–बड़ी भारी भरकम मूर्तिशिल्प के प्रचलन में, गरीब कलाकार अपना पेट काटकर हजारो रुपया लगाकर अपनी कृतिया तैयार करते है फिर सैकड़ो रूपया लगाकर दूर–दूर से रेलवे का भाड़ा देकर, बड़े–बड़े क्रेटों में अपनी कृतियाँ रखकर अकादमियों की प्रदर्शनी हेतु भेजते है– इस आशा से कि वे प्रदर्शित की जायेगी, पुरस्त की जायेगी तथा स्वरीदी जायेगी। इन हजारों कलाकारों की हजारों .तियों को, ऐसा कहा जाता है, एक दो तीन

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

अथवा पाँच व्यक्तियों की 'एक्सपर्ट समिति जाँच करती है। कुल में से सौ दो सौ छाँटती है प्रदर्शन के लिये, बाकी पुनः 'क्रेटो' में बन्द कर, भेजने वालों के स्वर्चे पर वापस कर दी जाती है। और इसका भगवान ही मालिक होता है। कि वे बिना क्षति के भेजने वाले के पास पुनः वापस पहुँच जायें। जिनकी .तियाँ वापस सही सलामत पहुँच जाती है। उनको कृतियाँ नष्ट्र–भष्ट्र होकर लौटती है उसके तो होश हवास ही गुम हो जाते है। ये अपने भाग्य को कोसते, हाथ मलते रह जाते है। कि वे मात्र अकादमी में प्रदर्शनी हेतु कला.तियों भेजना ही नहीं बन्दकर देते बल्कि कला के कार्य से ही उन्हें वितृष्णा हो जाती है।

चयन समिति के सदस्य अधिकाशतः एक ही अखाड़े के लोग होते है। जिन्हें उसी अखाड़े के प्रयास के बल पर चयन समिति में मनोनीत किया गया होता है। जो भी चयन समिति का सदस्य बनता है वह अच्छी तरह जानता है कि उसको यह मौका इसीलिये दिया गया है कि वह अपने, अखाड़े के लोगों का उद्धार करे। उसके पास अन्धा होकर रेवड़ी बाँटने के अलावा कोई रास्ता नहीं होता। निर्देश तथा निर्लज्ज होकर बाँटता है। अपने ही लागों में बाँटता है। अपने ही लोगों की कलाकृतियाँ ऊँचे दामों पर खरीदता है। वहाँ कला के स्तर तथा महत्व का सवाल नहीं होता, महत्व होता है केवल इसका कि कौन अपने अरबाड़े का है। कौन बाहर का। यह बातें आज किसी से छिपी नहीं है। बल्कि हर जानकार व्यक्ति की जबान पर है। यह है जनतंत्र में कलाकार की अभिव्यंजना की स्वतंत्रता का मस्यौल।

जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था है उससे कला के वास्तविक प्रगति तथा विकास की क्या आशा की जा सकती है। यह व्यवस्था कला को गलत रास्ते पर तो ले ही जाती है। उसके प्रगति के रास्ते की सबसे बड़ी दुश्मन बन जाती है। यही हुआ भी है। इन अकादमियों की छत्रछाया में। वास्तविक प्रगतिशील कलाकार पूरी तरह उदासीन होकर अलग बैठ जाते है। और अखाड़े बाजों का बाजार गर्म होता है। जिनका कला की प्रगति से शायद ही कोई सरोकार हो। उनका एकमात्र लक्ष्य स्वार्थ सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्ध पनपने पर न तो कला का स्तर ध्यान में रहता है न कला का राष्ट्रीय स्वरूप। यही कारण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के ४2 वर्ष बाद भी भारत की अपनी राष्ट्रीय कला का कोई रूप विकसित नहीं हो पाया है, मात्र पश्चिमी आधुनिक कला की काली छाया ही फैलती रही है। स्वार्थ सिद्धि के अखाड़े में उलझा व्यक्ति दूसरों की नकल पर ही जीवित रह सकता है कभी भी आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। आत्मनिर्भरता के लिये शीधे साधना, त्याग और तपस्या की जरूरत होती है। कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है। मात्र अरवाड़ेबाजी से जिनकी स्वार्थ सिद्धि हो जाती है। उन्ही तपस्या की क्या आवश्यकता राष्ट्रीय विकास से क्या सम्बन्ध, कला के वास्तविक अभ्युदय से क्या वास्ता। ऐसे लोग उस घुन के समान होते है जो सम्पूर्ण संस्कृति को चाट कर समाप्त कर देते है। राष्ट्रदोही होते है, राज्यदोही होते है। राज्य से प्रश्रय पाकर राज्य को ही क्षीण बनाते है, कला तो एक कोने में बैठकर सिसकियाँ भरती है। इसलिये प्रसिद्ध यथार्थवादी फ्रांसीसी चित्रकार कोर्बेट (ब्वनतइमज) ने १८७० आज से एक शताब्दी पूर्व ही इस तथ्य की ओर इशारा कर दिया था।

"कला के मामले में राज्य अयोग्य होता है। जब वह पुरस्कार देने लगता है वह जनता की रूचि ही छीन लेता है। उसका हस्तक्षेप पूरी तरह उत्साह भंग करने वाला तथा कलाकार के लिये, अनर्थकारी होता है, योग्यता की .ष्टि से उसे धोखे में डालता है, कला के लिये घातक होता है जिसे वह अपनी व्यवस्था के शिकंजे में जकड़ कर अत्यन्त बंजर तथा निम्न बना देता है। यह उसके लिये अक्लमंदी होगी यदि वह इससे दूर रहे। जिस दिन राज्य हमें मुक्त छोड़ देगा उस दिन वह हमारे प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर लेगा।

– प्रो० रामचन्द्र शुक्ल

(घ) कला विद्यालयों में मौलिक पाठ्य–क्रम एवं शिक्षा नीति का अभाव– भारत में पश्चिमी कला के प्रोत्साहन के लिए अंग्रेजो ने बम्मई में सन् १८८2 ई० में एक आर्ट सोसाएटी की स्थापना की। श्री फोरेस्ट इसके संस्थापक सचिव थे। जो १८६१ तक इस पद पर रहे। इस सोसाइटी का मुख्य कार्य भारत में फैले हुए यूरोपियन शौकिया कलाकारों के कार्य को प्रकाश में लाना था। इस सोसाइटी ने अपनी कला प्रदर्शनियों के द्वारा प्रायः अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी सेना के अधिकारियों को ही पुरस्.त किया। यह प्रवृत्ति १६३४.५५ ई० तक चलती रही। आरम्भ में तो केवल अंग्रेज जाति के कलाकारों को ही प्रोत्साहित किया जाने लगा। यहाँ घटिया यूरोपीय चित्रकार यहाँ तक कि कम्पनी–शैली में काम करने वाले भी अच्छे इनाम पा जाते थे। आरम्भिक आधुनिक भारतीय चित्रकारों में पुरस्कार पाने वालों में से कुछ है धुरन्धर रूस्तम सेसोदिया, एस० डी० सातवलेकर, अवलाल रहमान, रविशंकर रावल, पेस्टनजी वोमनजी, बाबूराव (मिस्सी) पेण्टर, जे०एम० अधिकारी, राम आर० अचरेकर, एन० एन० हलदंकर, के० बी० चूडेकर, आर० डी० घोपश्वेरकर तथा ए० ए० भोसले। इत्यादि।

"बिटिश सरकार का प्रयास केवल यही तक सीमित नहीं रहा। परिचमी पद्धति की कला–शिक्षा के लिए भारत के प्रमुख बड़े नगरों में कला–विद्यालय स्थापित किये गये यहाँ यूरोपीय शिक्षकों के निदेशन में भारतीय विद्यार्थियों को कला एवं शिल्प सिरवाया जाने लगा। इनकी शिक्षण–पद्धति का आदर्श लन्दन की रायल अकादमी आफ आर्ट्स के अनुरूप रखा गया। यहाँ के शिक्षाको तथा

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

छात्रों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासको तथा अन्य अधिकारियों की रूचि के अनुरूप कला–.तियाँ निर्मित करना था। इस कला–विद्यालयों ने धीरे–धीरे जन–रुचि को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया। किन्तु इन्हीं कला–विद्यालयों में आगे चल कर भारतीय कला के प्रशंसक शिक्षक तथा विद्यार्थी आये जिनके कारण इनमें प्रचलित पाठ्यक्रमों में भी समय–समय पर परिवर्तन किये गये। अतः पहले पश्चिमी अकादमिक–पद्धति के शास्त्रीयतावाद, फिर प्रभाववाद और उसके पश्चात् फाववाद तथा अभिव्यंजनावाद का प्रभाव भारतीय कलाकारों पर पड़ा। इसके उपरान्त घनवाद तथा अमूर्तकला का प्रभाव आया। कुछ कलाकारों ने घनवादी शैली से मूर्त तथा अमूर्त दोनों प्रकार की रचनाएँ की जैसे जहागीर सबावाल। जो कलाकार स्वतंत्रता के पूर्व तक आ.ति–मूलक थे। उनमें से अनेक महत्वपूर्ण कलाकार १९६० तक आते–आते अमूर्त चित्रण करने लगे जैसे रामकुमार, गायतोडे, .ष्ण स्वान्ना, मोहन सामन्त, सैयद हैदररजा, कवल कृष्ण, सतीश गुजराल, अविनाश चन्द तथा कृष्ण रेड्डी आदि। हुसेन कभी अमूर्त नहीं हुए।

बड़ौदा कला महाविद्यालय ने इस आधुनिकता को चुनौती दी, अन्तर्राष्ट्रीय शैली के नाम पर यूरोप के पूजीवादी देशों अमरीका तथा जापान में प्रचलित कला के अनुकरण पर उन्होंने प्रश्न चिन्ह लगा दिया। तथा आधुनिक पश्चिमी कला–आन्दोलनों के प्रति आधार–भूत शंका उत्पन्न कर दी। इस प्रकार उनके मूल्यांकन एक नये सिरे से करने तथा भारतीयता के सन्दर्भ में समझने की आवश्यकता हुई। यही कारण था कि बड़ौदा में १९६० के आसपास उभरने वाले कलाकार थोडे ही समय में राष्ट्रीय दृश्य पहल पर छा गये। उन्होंने सर्वाधिक राष्ट्रीय पुरस्कार भी जीते। इसी पृष्ठभूमि में १९६३ में। गुप– १८९० का भी निर्माण हुआ, यद्यपि इसके सभी कलाकार बड़ौदा के नहीं थे। बड़ौदा कला महाविद्यालय में पिछले दो दशकों (१९६०.१९८०) में कला–शिक्षा की धारणा में बुनियादी परिवर्तन आया है। वहाँ कला जगत के प्रश्नों को शंकालु दृष्टि से देखकर उनकी सत्यता को गहराई में पहुंचने का प्रयत्न किया जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पद्यपि कला अकादमियों तथा संग्रहालयों ने चित्र क्रय करना आरम्भ कर दिया है किन्तु कलाकार विदेशों में चित्र विक्रय से जो धन अर्जित कर रहे है। उसकी तुलना में भारत में प्राप्त होने वाला धन नगण्य है। यह एक विडम्बना ही है कि भारतीय कला के विदेशी ग्राहकों द्वारा ही भारतीय कलाकारों द्वारा की जा रही पश्चिम की अनुकृति पसन्द नहीं की गयी और उनके द्वारा कुछ ऐसी वस्तु जो भारतीय हो और जो उनके देशो की कला में न मिलती हो, को खरीदने की इच्छा की आधुनिक भारतीय चित्रकला में पश्चिम के अन्धाधुन्ध अनुकरण को रोकने का एक प्रबल कारण बनी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'तुलिकांकन'– वाराणसी फरवरी–मार्च, 1979,
2. आधुनिक कला 'समीक्षावाद' से साभार– लेखक प्रो0 राम चन्द्र शुक्ल।
3. 'समीक्षावाद' (एक कदम और आगे) से साभार–लेखक डॉ0 गोपाल मधुकर चतुर्वेदी।
4. आधुनिक चित्रकला, पृष्ठ सं0 95 से साभार–लेखक प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल।

*****